**अमृत वाणी**

यह सच है कि पानी में तैरने वाले ही डूबते हैं, किनारे पर खड़े रहने वाले नहीं, मगर किनारे पर खड़े रहने वाले कभी तैरना भी नहीं सीख पाते। *-वल्लभ भाई पटेल,*

## चिकित्सा सेवा के कलंक

गत् माह उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के बाबा राघव दास मेडीकल कॉलेजे में हुए हादसे के एक और मुख्य आरोपी डॉ. कफील अहमद को भी एसटीएफ ने दबोच लिया है। इस मेडीकल कॉलेज के प्रिंसिपल डॉ. राजीव मिश्रा और उनकी पत्नी डॉ. पूर्णिमा शुक्ला को पुलिस पहले ही गिरफ्तार कर चुकी है। इन सभी लोगों को पुलिस ने उस समय पकड़ा जब ये लोग भागने के फिराक में थे।

स्मरणीय है कि अगस्त के दूसरे सप्ताह में इस अस्पताल में कुछ समय के लिए ऑक्सीजन की आपूर्ति ठप्प हो जाने से बाल रोग विभाग में 33 मासूम शिशुओं की तथा मेडीसिन विभाग में 18 मरीजों की तड़पते हुए मौत हो गई थी।

हादसे के बाद बताया गया था कि लाखों का भुगतान बकाया होने से आक्सीजन आपूर्तिकर्ता कंपनी ने आक्सीजन की आपूर्ति रोक दी थी। एसटीएफ अब इस कंपनी के मालिक के गिरफ्तारी की तैयारी में है, जिसकी पूरी योजना बना ली गई है। आरोप यह भी है कि डॉ. काफिल जो हादसे के दौरान बच्चों के वार्ड के सुपरिन्टेंडेंट थे, अपने क्लीनिक के लिए अस्पताल के ऑक्सीजन सिलिंडर चुराकर ले जाया करते थे। कॉलेज के प्रिंसिपल राजीव मिश्रा और उनके बीच गहरी सांठगांठ थी और दोनों इसके लिए जिम्मेदार हैं। अभी तो क्रमश: और भी कई बाते प्रकाश में आएगी। हो सकता है कि ऑक्सीजन आपूर्तिकर्ता कंपनी मालिक के पकड़े जाने से कई और सनसनीखेज बातें प्रकाश में आए।

जो भी हो, इतना तो स्पष्ट हो ही गया है कि ये लोग चिकित्सा सेवा के नाम पर कलंक है। शासन शासकीय चिकित्सालयों में इनकी नियुक्ति पर लाखों रूपये व्यय करती है लेकिन इनकी न तो अपनी सेवा के प्रति कोई जवाबदारी रही है न ही मरीजों के प्रति कोई करूणा या सेवा भाव। बल्कि शासन द्वारा अस्पताल में उपलब्ध कराए गए सुविधाओं का अपने हित में इस्तेमाल करने का यथासंभव प्रयास इनका मुख्य लक्ष्य होता है। इसे इनकी क्रूरता की पराकाष्ठा के अलावा क्या कहा जा सकता है जो इनके भरोसे अस्पताल में भर्ती 33 मासूम बच्चों और 18 अन्य रोगियों की जान इसलिए चली गई क्योंकि इन्हें दिया जा रहा ऑक्सीजन जानबूझकर रोक दिया गया। इन जैसे पत्थर दिल लोगों को इससे कोई फर्क न पड़ता हो पर जिन लोगों ने अपने जिगर के टुकड़ों और आत्मीयो को खोया है उनके दर्द का अंदाजा कौन लगा सकता है।

उप्र के मुख्यमंत्री ने इस हादसे के दोषियों को नहीं बख्शे जाने की बात कही थी। उस परिपेक्ष्य में इन मुख्य आरोपियों को तत्परता से दबोचा जाना महत्वपूर्ण है। अब देखना यह होगा कि कानून इन्हे कितना सख्त सजा देती है। निश्चित ही इनकी सजा दूसरों के लिए भी सबक सिद्ध होगी।

वैसे भी देश में बार-बार शिशुओं के मौत की खबर से अस्पतालों में उपलब्ध सेवा पर सवालिया निशान लग रहे है। हाल ही में आई एक खबर के अनुसार राजस्थान के बांसबाड़ा में महात्मा गांधी चिकित्सालय में 51 दिनों के भीतर 81 नवजात शिशुओं की मौत हो चुकी है। अस्पताल प्रबंधन कुपोषण को मौत का कारण बता रहा है। पर इससे अस्पताल की जिम्मेदारी समाप्त नहीं हो जाती।

रायपुर के अम्बेडकर अस्पताल में भी ऑक्सीजन नहीं मिलने से तीन बच्चों की मौत हो गई। बताया गया है कि ड्यूटी पर तैनात कर्मचारी के सो जाने से ये हादसा हुआ।

यहां भी शासन दोषी पर कार्यवाही तो कर रही है लेकिन मुख्य तथ्य यह है कि हादसे के बाद कार्यवाही से मृतकों को वापस तो नहीं लाया जा सकता।

इसलिए समय की महती मांग यह है कि शासकीय अस्पतालों की व्यवस्था के सुधार पर विशेष ध्यान दिया जाय ताकि लोगों के जीवन से खिलवाड़ की यह परंपरा खत्म हो तथा आम लोग भरोसे के साथ वहां इलाज करा सकें।

## राजकाज

### राजनीति के ब्लू व्हेल हैं अमित शाह- बीजद

ओडिशा की सत्तारूढ़ पार्टी बीजद ने भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अमित शाह पर पलटवार करते हुए उनकी तुलना जानलेवा ऑनलाइन गेम श्ब्लू व्हेल चैलेंज से कर दी है। बीजद महासचिव एवं पूर्व मंत्री अरूण साहू ने तो बकायदा ओडिशा के युवाओं से अपील भी कर दी है कि वे अमित शाह से दूर ही रहें क्योंकि वह राजनीति के ब्लू व्हेल हैं जो लोगों को गलत रास्ता बताते हैं। यही नहीं उन्होंने शाह की भाषा को असुरों वाली भाषा करार दिया है। गौरतलब है कि इससे पहले भाजपा अध्यक्ष अमित शाह ने ओडिशा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक पर निशाना साधा था और कह दिया था कि राज्य की पटनायक सरकार एक जले हुए ट्रांसफॉर्मर की तरह है जिसे जनता को उखाड़कर फेंक देना चाहिए ताकि राज्य का विकास सुनिश्चित हो सके। इस प्रकार देखा जाए तो कोई गंभीर बात नहीं है बस क्रिया की प्रतिक्रिया हो रही है और जब तक चुनाव संपन्न नहीं हो जाते यह सिलसिला यूं ही चलने वाला है।

### घटना छोटी फिर परिणाम भयानक क्यों

राजस्थान के गुलाबी शहर जयपुर के रामगंज थाना क्षेत्र में एकत्रित भीड़ ने पुलिस थाने के सामने जमकर हंगामा किया और जब पुलिस ने उन पर कार्रवाई की तो आगजनी तक कर दी गई। लाठियां चलीं आंसू गैस के गोले दागे गए और अनेक वाहनों को आग के हवाले कर दिया गया। हालात बेकाबू होता देख मोबाइल इंटरनेट सेवाएं बंद कर दी गईं और अंतत रामगंज समेत चार इलाकों में कर्फ्यू लगा दिया गया। यह पूरी घटना पुलिस चैंकिंग के दौरान कथिततौर पर युवक को पीटने से जुड़ी हुई बताई जाती है। मतलब साफहै कि पुलिस की कार्रवाई से लोगों की भीड़ इसकदर नाराज हुई कि उसने पुलिस प्रशासन की ही ईंट से ईंट बजाने की ठान ली। इसमें अनेक पुलिस वाले घायल हुए जबकि एक व्यक्ति की मौत होने की भी खबर है। इस पर लोग कहते हैं कि पूरी घटना कहीं न कहीं पुलिस रवैये के प्रति लोगों में बढ़ते रोष को प्रदर्शित करती है।

# म्यांमार में रह रहे रोहिंग्याओं के समक्ष पहचान का संकट

**रोहिंग्या मुस्लिम एक बार पुन: चर्चा में है। वर्तमान में म्यांमार सेना द्वारा उत्पीड़न का शिकार हो रहे है। हालात यह है कि भारी संख्या में म्यांमार सेना ने रोहिंग्या मुस्लिमों को मौत के घाट उतार दिया तो भारी संख्या में ये लोग म्यांमार छोड़कर अपनी जान बचाने हेतु बाग्लादेश और थाइलैंड की सीमा में प्रवेश कर रहे है । ये लोग शरणार्थी शिविरों में नारकीय जिन्दगी जीने को विवश है। म्यांमार सरकार इनको अपना नागरिक नहीं मानती है और समय समय पर इनका दमन करती रहती है।प्रश्न उठता है कि आखिर रोहिंग्या मुस्लिम कौन है रोहिंग्या मुस्लिम मुख्य रूप से रखायिन प्रांत में बसने वाले अल्पसंख्यक समुदाय के लोग है जो सदियों से म्यांमार में रहते आ रहे है।**

लेकिन आश्चर्य है म्यांमार की सैन्य सरकार ने 1982 में अपनी नीतियों से इन्हें देशविहीन बना दिया है। दरअसल रोहिंग्या मुस्लिमों को नागरिकता से वंचित कर रखा है जिसके कारण म्यांमार में बुनियादी सुविधाओं जैसे शिक्षा, सरकारी नौकरी आदि से वंचित कर दिया है और म्यांमार में इनकी आबादी के खात्मे हेतु समय समय पर म्यांमार सेना द्वारा दमन चक्र चलाया जाता है।

रोहिंग्या मुस्लिमों के पृष्ठभूमि को समझने के लिए इतिहास के पन्नों को पलटने की आवश्यकता है। ज्ञात हो कि भारतीय उपमहाद्वीप से बर्मा में प्रवास सदियों पहले हुआ जब बौद्ध, इस्लाम और हिंदू धर्म का प्रसार इस क्षेत्र में हुआ। बंगाल, वर्तमान बांग्लादेश और भारतीय राज्य पश्चिम बंगालद्ध का रखाइन प्रांत, पूर्व अराकान से सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संबंध है। कम से कम 15 वी शताब्दी से अराकान में बंगाली बोलने वाले लोगों के बसने की जानकारी मिलती है जब इस क्षेत्र में मराउक यू राज्य का शासन था। मराउक यू के राज्य की भौगोलिक स्थिति को देखा जाए तो बंगाल की खाड़ी के पूर्वी तट के निकट थाएजो बांग्लादेश के कुछ हिस्सो और बर्मा के अराकान क्षेत्र पर 1429 से 1785 ईस्वी तक शासन किया। 17 वी शताब्दी में अराकान हमलावरों द्वारा दासों को लाया गया। इसमें ऐसे दास भी शामिल थे जो मुगल बड़प्पन के सदस्य थे। उनमें से एक उल्लेखनीय शाही दास अलेओल थे जो अराकान के कोर्ट में प्रसिद्ध कवि थे।दासो की जनसंख्या बौद्ध शासकों के यहाँ विभिन्न कार्यबल में कार्यरत रहे जैसे वाणिज्य, कृषि, राजा की सेना आदि एलेकिन रोहिंग्या लोगों की समस्या तब बढ़ गई जब 1785 में म्यांमार के अराकान को कोनबंग राजवंश ने जीत लिया। जिसके पश्चात रखाइन से लगभग 35000 रोहिंग्या अपने पड़ोसी चिटगांव क्षेत्र, ब्रिटिश बंगाल का हिस्साद्ध में भाग आए ताकि बर्मा के बमर जैसी प्रभावी जाति के उत्पीड़न से बचा जा सके। बावजूद हजारों की संख्या में रखाइन में रह रहे लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया तथा मध्य बर्मा जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र से इन्हें निर्वासित कर दिया। चूंकि उस समय अंग्रेज अपने उपनिवेश का विस्तार कर रहे थे। उसी क्रम में 1824.1826 तक आंग्ल बर्मा युद्ध हुआ जिसमें अंग्रेज विजयी हुए जिसके परिणाम स्वरूप बर्मा का अराकान क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन आ गया। अंग्रेजों ने बंगाल के निवासियों को प्रोत्साहित किया कि वे लोग कम जनसंख्या और अराकान की उपजाऊ घाटी में बस जाए। वैसे भी ईस्ट इंडिया कंपनी की बंगाल प्रेसीडेंसी का विस्तार अराकान तक था। उस समय बंगाल और अराकान के मध्य कोई अंतरराष्ट्रीय सीमा नहीं थी और न ही इन क्षेत्रों मे एक स्थान से दूसरे स्थान जाने को पाबंदी थी।इसलिए 19 सदी के प्रारंभ में हजारों की संख्या में बंगाली चिटगांव क्षेत्र से अराकान; म्यांमारद्ध में काम की मांग के अवसरों के फलस्वरूप बस गए। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत से बर्मा में अधिक प्रवास हुआ है क्योंकि बर्मा 1937 तक ब्रिटिश भारत का हिस्सा रहा है।ज्ञात हो कि बर्मा के अराकान में ब्रिटिश भारतीयों का प्रतिशत सबसे ज्यादा था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 1942 में ब्रिटिश सशस्त्र बल रोहिंग्या रंगरूटो और जापानी समर्थक रखाइन के मध्य साम्प्रदायिक हिंसा में अराकान में नरसंहार हुआ और इस क्षेत्र का जातीय अर्थ के साथ ध्रुवीकरण हुआ। उल्लेखनीय है कि बर्मा अंग्रेजों के अधीन था इसलिए बहुत से अराकान भारतीय जैसे गनी मारकन लेजिस्लेटिव काउंसिल ऑफबर्मा में बर्मा के निवासी के तौर पर ब्रिटिश बर्मा में 1936 और 1939 में चुने गए थे।वैसे ईस्ट इंडिया कंपनी के रिकॉर्ड में रोहिंग्या का नाम रूइंगा दर्ज है।

1948 में बर्मा के स्वतंत्र होने के पश्चात रोहिंग्या नेताओं ने बर्मा सरकार और संसद में बड़े पदो को धारण किया।।वैसे तो बर्मा एक लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्वतंत्र हुआ था ।लेकिन राजनीतिक अस्थिरता के कारण 1962 में जनरल ने विन के नेतृत्व में सैन्य तख्तापलट से म्यांमार सैनिक शासन के गिरफ्त में आ गया। बर्मा के सैन्य शासकों के सत्ता पर काबिज होने के पश्चात रोहिंग्या मुस्लिमों के बुरे दिन की शुरूआत हो चुकी थी। सैन्य शासकों ने रोहिंग्या को कमजोर करने हेतु नाटकीय ढंग से प्रावधानों में बदलाव किए। नेशनल रजिस्ट्रेशन कार्ड की प्राप्ति सभी नागरिकों के लिए आवश्यक थे यद्यपि रोहिंग्या को केवल विदेशी पहचान पत्र दिए गए।जिससे इन लोगों के नौकरियों और शिक्षा के अवसरों को सीमित किया जो उन्हें आगे बढ़ाने और प्राप्त करने मे मदद कर सकते थे। रहा सहा कसर सैन्य शासकों ने 1982 में नए नागरिकता कानून को बनाकर कर दिया।जिसके आधार पर रोहिंग्या तो छोड़िए प्रवासी भारतीयों को भी नागरिक मानने से इंकार किया और राज्य विहीन कर दिया।

जब कोई देश किसी समुदाय को नागरिक न माने तो क्या होता है।नागरिकता क्यों आवश्यक होती हैय् जैसा कि ज्ञात है कि किसी भी देश के संविधान में नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार दिए जाते है।जिसके माध्यम से व्यक्ति अपना सामाजिकए राजनीतिक एसांस्कृतिक और आर्थिक विकास करता है।यदि इन अधिकारों को किसी से छीन लिया जाएगा तो वो व्यक्ति या समुदाय अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता है। भारतीय संविधान के संदर्भ में देखे तो यहाँ भी अनु 12.35 तक मौलिक अधिकार प्रदत्त है।यदि राज्य मौलिक अधिकारों को छिनने का प्रयास करता है तो ऐसे में न्यायालय की शरण ली जा सकती है।

लेकिन म्यांमार के संदर्भ में देखें तो म्यांमार की सैन्य सरकार ने 1982 के नागरिकता कानून के अंतर्गत तो रोहिंग्या को अपना नागरिक माना ही नही है।तो ऐसे में उन्हें किसी प्रकार का संरक्षण तो उपलब्ध नहीं होगा और संरक्षण नहीं तो किसी प्रकार का सुरक्षा नही।यही कारण था कि म्यांमार सैन्य सरकार ने रोहिंग्या को नागरिकता से वंचित किया।जिसके पश्चात इनसे नागरिकों के सारे अधिकार छीन लिए गए।जिसके कारण इन लोगों को पढ़नेए कार्य करनेएयात्रा करनेएअपने धर्म का अनुसरण करनेएस्वास्थ्य सेवाओं पर लगातार पाबंदी लगाई गई है। इससे इनके जीवन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।ये लोग बंधुआ मजदूरों की भांति जीवन जीने को विवश है।इन पर आए दिन सैन्य शासको द्वारा उनका उत्पीड़न होता रहा। म्यांमार में लंबे समय तक सैन्य शासन; मिलिट्री जुंटाद्ध रहा है।लेकिन म्यांमार में व्यवस्था परिवर्तन को लेकर लंबे समय तक मिलिट्री जुंटा के विरूद्ध आंदोलन के पश्चात 2015 में लोकतंत्र को बहाल करने की दिशा में चुनाव हुये जिसमें आंग सान सू ची की पार्टी विजयी रही। सूची को मानवाधिकार हेतु संघर्ष के प्रतीक के रूप में जाना जाता है। दरअसल आंग सान सूची म्यांमार में लंबे समय से सत्ता पर काबिज मिलिट्री जुंटा ; सैन्य शासन के विरूद्ध लोकतंत्र बहाली हेतु संघर्षरत रही और इसी कारण इन्हें 1991 में नोबल पुरस्कार से नवाजा गया।

**-अनिता वर्मा,**
( ये लेखक के अपने विचार है )

# देश में न्याय की उम्मीद जगाते हाल के फैसले

अभी हाल ही में भारत में कोर्ट द्वारा जिस प्रकार से फैसले दिए जा रहे हैं वो देश में निश्चित ही एक सकारात्मक बदलाव का संकेत दे रहे हैं। 24 साल पुराने मुम्बई बम धमाकों के लिए अबु सलेम को आजीवन कारावास का फैसला हो या 16 महीने के भीतर ही बिहार के हाई प्रोफाइल गया रोडरेज केस में आरोपियों को दिया गया उम्र कैद का फैसला हो ए देश भर में लाखों अनुनाईयों और राजनैतिक संरक्षण प्राप्त डेरा सच्चा सौदा के राम रहीम का केस हो या फ्रि देश के अल्पसंख्यक समुदाय से जुड़े तीन तलाक का मुकदमा हो। इन सभी में कोर्ट द्वारा दिए गए फैसलों ने देश के लोगों के मन में न्याय की धुंधली होती तस्वीर के ऊपर चढ़ती धुंध को कुछ कम करने का काम किया है।

देश के जिस आम आदमी के मन में अबतक यह धारणा बनती जा रही थी कि कोर्ट कचहरी से न्याय की आस में जूते चप्पल घिसते हुए पूरी जिंदगी निकाल कर अपनी भावी पीढ़ी को भी इसी गर्त में डालने से अच्छा है कि कोर्ट के बाहर ही कुछ ले दे कर समझौता कर लिया जाए। वो आम आदमी जो लड़ने से पहले ही अपनी हार स्वीकार करने के लिए मजबूर था आज एक बार फ्रि से अपने हक और न्याय की आस लगाने लगा है। जिस प्रकार आज उसके पास उम्मीद रखने के लिए कोर्ट के हाल के फैसले हैं इसी प्रकार कल उसके पास उम्मीद खोने के भी ठोस कारण थे।

उसने न्याय को बिकते और पैसे वालों को कानून का मजाक उड़ाते देखा था। उसने एक अभिनेता को अपनी गाड़ी से कई लोगों को कुचलने के बाद और हिरण का शिकार करने के बावजूद उसे कोर्ट से बाइज्जत बरी होते देखा था। उसने दिल्ली के उपहार सिनेमा कांड में 18 साल बाद आए फैसले में आरोपियों को सज़ा देने के बजाए दिल्ली सरकार को मुआवजा देकर छोड़ने का फैसला देखा था। उसने भोपाल गैस त्रासदी में लाखों लोगों के प्रभावित होने और 3787 लोगों के मारे जाने के बावजूद ; हालांकि अनाधिकृत संख्या 16000 के ऊपर हैद्ध उस पर आने वाला बेमतलब का फैसला देखा था। उसने जेसिका लाल की हत्या के हाई प्रोफाइल आरोपीयों को पहले कोर्ट से बरी होते लेकन फ्रि मीडिया और जनता के दबाव के बाद उन्हें दोषी मानते हुए अपना ही फैसला पलट कर दोषियों को आजीवन कारावास की सज़ा सुनाते देखा था। उसने न्यायालयों में मुकदमों के फैसले आते तो बहुत देखे थे लेकिन न्याय होता अब देख रहा है। उसने इस देश में एक आम आदमी को न्याय के लिए संघर्ष करते देखा है। उसने इस देश की न्यायिक प्रणाली की दुर्दशा पर खुद चीफजस्टिस को रोते हुए देखा है। जिस कानून से वह न्याय की उम्मीद लगाता है उसी कानून के सहारे उसने अपराधियों को बच के निकलते हुए देखा है। दरअसल हमारे देश में कानूनों की कमी नहीं है लेकिन उनका पालन करने और करवाने वालों की कमी जरूर है। कल तक हम कानून से खेलने वाला एक ऐसा समाज बनते जा रहे थे जहाँ पीड़ित का संघर्ष पुलिस थाने में रिपोर्ट लिखवाने के साथ ही शुरू हो जाता था। राम रहीम से पीड़ित साधवी का उदाहरण हमारे सामने है।उन्हें अपनी पहचान छिपाते हुए देश के सर्वोच्च व्यक्ति माननीय प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर अपनी पीड़ा बयान करनी पड़ी थी फ्रि भी न्याय मिलने में 15 साल और भाई का जीवन लग गया।

यह वो देश है जहाँ बलात्कार की पीड़ित एक अबोध बच्ची को कानूनी दाँवपेंचों का शिकार हो कर 10 वर्ष की आयु में एक बालिका को जन्म देना पड़ता है।

जहाँ साध्वी प्रज्ञा और कर्नल पुरोहित को सुबूतों के अभाव के बावजूद सालों जेल में रहना पड़ता है । जान मार्शल जो कि अमेरिका के चौथे चीफ जस्टिस थेएउनका कहना था कि न्याय व्यवस्था की शक्ति प्रकरणों का निपटारा करनेएफैसला देने या किसी दोषी को सजा सुनाने में नहीं हैएयह तो आम आदमी का भरोसा और विश्वास जीतने में निहित है। जबकि भारत में इसके विपरीत मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधिपति किरूबकरन को एक अवमानना मामले की सुनवाई के दौरान भारतीय न्याय व्यवस्था के विषय में कहना पड़ा कि देश की जनता पहले ही न्यायपालिका से कुण्ठित है अत: पीड़ित लोगों में से मात्र 10: अर्थात अतिपीड़ित ही न्यायालय तक पहुँचते हैं।

बात केवल अदालतों से न्याय नहीं मिल पाने तक सीमित नहीं थीए बात न्यायिक प्रक्रिया में लगने वाले समय की भी है लेकिन यह एक अलग विषय है जिस पर चर्चा फ्रि कभी। जब कोर्ट में न्याय के बजाय तारीखें मिलती हैं तो सिर्फ उम्मीद नहीं टूटती हिम्मत टूटती हैए सिर्फपीड़ित व्यक्ति नहीं हारता उसका परिवार नहीं हारता लेकिन यह हार होती है उस न्याय व्यवस्था की जो अपने देश के हर नागरिक के मौलिक अधिकारों की भी रक्षा नहीं कर पाती।

कहते हैं कानून अँधा होता है लेकिन हमारे देश में तो पिछले कुछ समय से वो अंधा ही नहीं बहरा भी होता जा रहा था। उसे न्याय से महरूम हुए लोगों की चीखें भी सुनाई नहीं दे रही थीं। किन्तु आज फ्रि से इस देश के जनमानस को इस देश की कानून व्यवस्था पर भरोसा होने लगा है कि न्याय की देवी की आँखों पर जो पट्टी अबतक इसलिए बंधी थी कि वह सबकुछ देख कर अनदेखा कर देती थी लेकिन अब इसलिए बंधी होगी कि उसके सामने कौन खड़ा है इससे उन्हें कोई मतलब नहीं होगा और उनकी नज़र में सब बराबर हैं यह केवल एक जुमला नहीं यथार्थ होगा।

**-डॉक्टर नीलम महेन्द्र ,**
( ये लेखक के अपने विचार है )

# कलम के सिपाहियों पर खतरा

हम लेखकों के लिए यह कितनी आत्माभिमान की बात है कि कर्नाटक सरकार ने अठारह प्रगतिशील लेखकों और विचारकों को पुलिस सुरक्षा देने का फैसला किया है। वरिष्ठ पत्रकार गौरी लंकेश की हत्या के बाद खुफिया रिपोर्ट के आधार पर यह निर्णय लिया गया है। निर्णय तो यह भी लिया गया है कि पुलिस ऐसे लेखकों की सूची भी तैयार करेगी जिन्हें जान से मारने की धमकी दी गई है। अब हम भी गर्व से कह सकते हैं कि हमारी जान की भी कीमत है और सरकार तक को परवाह है। हाँ अभी चिन्ता केवल प्रगतिशील लेखकों की ही की गई है। हम तो फिर पिछड़े हुए लेखक ही कहलायेंगे, तब क्या हमारी सुरक्षा नहीं होगी या फिर हम अपने आप को सुरक्षित मानें। या फिर असुरक्षित ही रहें!

वैसे कलम के सिपाही सुरक्षित कहाँ हैं! अभी तक तो कोई भी ऐरा.गेरा नत्थु.खेरा चाहे जो बक जाता है और जान से मारने की धमकी दे जाता हैए लगता है कि अब ऐसा नहीं चलेगा। अभी कर्नाटक सरकार जागी हैएकल को अन्य प्रदेशों की सरकारें जाग जाएं! देश की सरकार भी जाग सकती है। आने वाले दिनों में यह भी हो सकता है कि बड़े.बड़े लेखकों को जेड प्लस सुरक्षा मुहैया हो जाए और हमें उनसे मिलने के लिए सुरक्षा कवच भेदने के गुर भी सीखना पड़े।कुछ लेखक जिनके साईड बिजनेस चल रहे होंए वे भी सलमान खान की तरह अपने निजी बाउन्सर किराये पर रख लें। कितना अच्छा लगेगा जब एक लेखक, एक विचारक, एक साहित्यकार अंगरक्षक के साथ चलेगा। उसका सीना गर्व से छप्पन इंच का हो जाएगा जब उसके साथ वर्दीधारी और बन्दुकधारी अंगरक्षक चलेंगे यह बात अलग है कि उन वर्दीधारी साहब बहादुरों की सेवा में कलमचियों को अपना समय देना पड़ेगायचाय.नाश्ता करवाते रहना होगा, वरना कभी भी वे सुरक्षा को खतरा पैदा करवा सकते हैं ऐसे में हो सकता है कि वह बन्दा अपना लेखन कर्म भूलकर उन साहब बहादुरों से प्राप्त सुरक्षा का ही आनन्द ले और अपने आप को वीआयपी मानने की भूल कर बैठे। एक बात जरूर विचारणीय है कि कलम के सिपाही पुरी दुनिया को हिलाने का माद्दा रखते हैं और कहते भी हैं कि

**न तीर से न तलवार से**
**न बन्दुक से न हथगोलों से**
**हम तो लड़ते हैं महज**
**कागज और कलम की धार से**

और यह कागज और कलम की ताकत ही है जिनको सरकार और सरकार चलाने वाले साथ ही जो सरकार बनाने की चाहत रखते हैं साधने में लग जाते हैं तब क्या कलम का सिपाही कमजोर पड़ गया है। सीमा पर लड़ने वाला सिपाही तो हँसते.हँसते अपने सीने पर गोली खाकर अपने प्राणों की बाजी लगा देता है, तब यह कलम का सिपाही कहाँ और कैसे टूट जाता है, वह सरकार का मुखापेक्षी क्यूँकर हो जाता है!आज कलम के सिपाही को अपने जान.माल की सुरक्षा की चिन्ता सताने लगी है तो कल यह भी हो सकता है कि सीमा पर लड़ने वाला सिपाही भी अपनी सुरक्षा की बात कहने लगे क्योंकि उनके मामले में तो मानव अधिकार आयोग भी मुँह में दही जमाये बैठा है! वैसे इसका यह अर्थ भी नहीं है कि कलम के सिपाही अपनी गर्दन तश्तरी में लिये घुमते रहें तथापि उसे अभिव्यक्ति की आजादी तो मिलना चाहिए लेकिन क्या यह आजादी याचक बन कर लेना होगी! या फिर जो मन चाहा वह लिखते रहेंगे और गोली खाते रहेंगे। खैर, वे अभिव्यक्ति की आजादी जितनी देना चाहें दें, हमें तो अपनी जान प्यारी है भाई। अब कलम के सिपाही बन गए हैं तो क्या! आप ही देखें, जब वे पार्टी के सच्चे सिपाही होते हैं और देश, काल, परिस्थिति के हिसाब से अपने आप को बदलने की क्षमता रखते हैं तब फिर कलमकार ऐसा क्यों न करें। जहाँ से सुख.सुविधा और सुरक्षा मिलेगी, उन्हीं की बात तो होगी, चाहे वे दाहिने चलने वाले हों या वाम यानी बायें चलने वाले हों। बात तो अपने सरपरस्तों की ही होगी और इसके लिए संरक्षण की जरुरत तो होगी ही। संरक्षण मिलेगा तो कलम भी वैसी चलेगी। आखिर कलम के सिपाही का भी अपना घर-बार है!

**-प्रदीप उपाध्याय,**
( ये लेखक के अपने विचार है )